चतुर्थ अध्याय

चेतना – विविध युगों में

द्वितीय अध्याय में ज्ञानीजी अर्थात कबीर साहब के सत्सुकृत, मुनीन्द्र करुणामय तथा कबीर इन चार नाम रूपों का कथन किया गया। इस अध्याय में सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग इन चारों युगों में उनके विविध रूपों में जीव कल्याणार्थ किये गये परोपकारों का विविध रोचक वृत्तान्तों द्वारा उल्लेख किया जा रहा है।

कबीर साहब अपने प्रिय शिष्य धर्मदास से पृथिवी पर अवतरित होने का वृत्तान्त इस प्रकार बताते हैं –

धर्मदास सुन सतयुग भाऊ। जिन जीवन को नाम सुनाऊ।।
सतयुग सत्तसुकृत ममनाऊँ। आज्ञा पुरुष जीव चेताऊँ।।[1]

(क) सतयुग में निज चेतना

सतयुग में निज चेतना; ज्ञानी जी (कबीर) के प्रथम स्वरूप सत्तसुकृत रूप में धरा पर अवतरित हुई। शिष्य धर्मदास के द्वारा यह जिज्ञासा की गई कि सतयुग में उन्होंने कितने जीवों का उद्धार किया।

धन्यभाग हम तुम कहँ पायी। मोहँ अधम कहँ लीन्ह जगायी।।
अब वह कथा कहों समुझायी। सतयुग कौन जीव मुकताई।।[2]

सत्तसुकृत जी ने सत्तपुरुष की आज्ञानुसार नामदान करना आरम्भ कर दिया तथा धोंघल राजा और वृद्धा खेमसरी सहित मात्र बारह लोगों को नाम–दान किया। उन्होंने जीवों को बहुत चेताया किन्तु किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जो जीव उनके कथानुसार चले उन बारह जीवों को उन्होंने नामदान देकर, उनकी शब्द चेतना को जगाकर उन्हें सतलोक पहुँचा दिया।

हंस द्वादश बोधि सतगुरु, गयउ सुख सागर करी।
सतपुरुष चरण सरोज परसेउ, विहसिके अंकम भरी।।[3]
जो जीवन पर बोध्यो आई। तिन कहँ दीन्हा लोक पठाई।।[4]

अनुराग सागर की (पाद टिप्पणी के अनुसार) किसी प्रति में द्वादश के स्थान पर त्रयोदश लिखा है और किसी–किसी में द्वादश, त्रयोदश कुछ न लिखकर दिनदश बांधि लिखा है।

काल निरंजन को दिये गये वचनानुसार उन्होंने बलात् किसी जीव को इस ओर नहीं खींचा। सतयुग में सर्वप्रथम उन्होंने घोंधल बादशाह को कृतार्थ किया।

घोंधल वृत्तान्त

सतयुग में घोंधल नामक एक राजा था। सर्वप्रथम सत्सुकृत जी उसी के पास गये तथा उसको चेतन सत्–शब्द के भेद का सत्संग सुनाया और वह प्रभावित होकर नाम लेने के लिए तैयार हो गया। सत्सुकृत जी ने उसे परमात्मा से मिलने का रहस्य समझाया –

नृप घोंधल पाहँ मैं चलि आई। सत्य शब्द सो ताहि सुनाई।।
सत्य शब्द तिन हमरो माना। तिन कह दीन्ह पान परमाना।।[5]

राजा घोंधल संत–महात्माओं का बहुत सम्मान करता था अतः वह सज्जनों का अत्यन्त प्रिय था किन्तु किसी संत–महात्मा ने उसे माया–काल की परिधि से रहित चेतन पुरुष के तथा चेतन लोकों के बारे में नहीं बताया था। सत्सुकृत जी के द्वारा जब नृप घोंधल को नामदान कर परम चेतन तत्त्व के विषय में बताया गया तो वह दृढ़ विश्वास के साथ शब्द अभ्यास में संलग्न हो गये। घोंधल ने उनके चरणों पर माथा टेक कर चरणामृत का पान किया। नाम–दान के साथ ही घोंधल को परमात्मा के दर्शन हो गये और वे नित चेतन रहते, अर्थात चेतन पुरुष में लीन रहने लगे –

राय घोंधल संत सज्जन, शब्द मम दृढ़ के गह्यो।।
सार सीत प्रसाद लीन्हौ, चरण परसत जल लह्यो।।
प्रेम से गदगद सब भयो, तजेउ भ्रम विभाय हो।।[6]

खेमसरी वृत्तान्त

राजा घोंधल को नामदान करके सत्सुकृत (कबीर साहब) सीधे मथुरा नगरी पहुँचे जहाँ खेमसरी नामक एक वृद्धा नारी उनके पास पहुँची।

घोंधल शब्द चिताए, तब आयउ मथुरा नगर ।।
खेमसरि आयो धाय, नारि वृद्ध गो बालिसों।।[7]

खेमसरी सतसुकृत जी के आगमन से हर्षित होकर पूछने लगी कि आप कहाँ से पधारे हैं तथा आपके यहाँ आने का उद्देश्य क्या है। खेमसरी ने उन्हें पुराण पुरुष अनुभव किया। सत् सुकृत जी ने खेमसरी को वही शब्दोपदेश किया जो राजा घोंधल को किया तथा दयाल चेतना एवं काल चेतना का पृथक्–पृथक् ज्ञान कराया। इससे खेमसरी के मन से जगत्–जंजाल के सारे भ्रम दूर हो गये। उसके मन में परम पुरुष

के दर्शन के लिए खिंचाव हुआ तब सत्सुकृत जी ने उसकी सुरत (रूह या जीवात्मा) को सतलोक के दर्शन कराये। इससे उसके मन में विश्वास उत्पन्न हुआ। उसका शरीर तो मर्त्यलोक में था किन्तु उसकी आत्मा पलभर के लिए परमात्मा के दर्शन कर मग्न हो गई। पुनः जब उसकी आत्मा को देह में वापस लाये तो उसको परम चेतना से नाता टूटने से कष्ट एवं पछतावा होने लगा। अतः वह सत्सुकृत जी से पुनः उसी चेतन सतलोक में जाने की विनती करने लगी।

कहे खेमसरी पुरुष पुराना। कहवाँते तुम कीन्ह पयाना।
तासो कहिउ शब्द उपदेशा। पुरुष भाव अरु यम को भेषा।।
सुना खेमसरि उपज भाऊ। जब चीन्हा सब यम का दाऊ।।
पै धोखा इक ताहि रहाई। देखि लोक तब मन पतियाई।।
राखेउ देह हंस लै धावा। पल इक माहि लोक पहुँचावा।।
लोक दिखाए हंस लै आयो। देह पाय खेमसरी पछतायो।।
हे साहेब लै चलु वहि देशा। यहाँ बहुत है काल क्लेशा।।[8]

खेमसरी पर दया करते हुए सत्सुकृत जी कहने लगे कि जब तक टीका पूरा (कर्म–चक्र पूर्ण होना) नहीं होता तब तक तुम नाम का जाप करती रहो। तुमने हमारा लोक तो देख ही ही लिया है, अब तुम अन्य जीवों को भी इसका उपदेश कर सकती हो। एक भी अन्य व्यक्ति को यदि आप सत्संग में लावेंगे तो सत्पुरुष के अत्यन्त प्रिय हो जायेंगे। यह उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्य है जैसे एक गाय जो सिंह के मुँह में जा रही हो और कोई बहादुर व्यक्ति उसे सिंह के मुँह से बचा ले। काल प्राणियों को अपना ग्रास बना रहा है। जो जीव उसे सत्संग में लाता है वह उसके काल–जाल से बचाने का उत्तम कार्य करता है। ऐसा व्यक्ति सभी की प्रशंसा का पात्र होता है। कोई सत्संगी जब एक जीव को सत्संग के लिए प्रेरित करता हुआ उसकी भक्ति को दृढ़ करने में साधन बनता है तो वह करोड़ो गो दान के पुण्य को प्राप्त करता है।

जबलों टीका पूरे न भाई। तब लग रहो नाम लौ लाई।।
तुम तो देखा लोक हमारा। जीवन को उपदेशहु सारा।।
एकहु जीव शरणागत आवे। सो जीव सत्यपुरुष को भावे।।
जैसे गऊ बाघ मुख जाई। सो कपिलहि कोइ आय छुड़ायी।।
ता नर को सब सुयश बखाने। गऊ छुड़ाय बाघते आने।।
जस कपिला कहँ केहरि त्रासा। ऐसे काल जीव कहँ ग्रासा।।

एक जीव जो भक्ति दृढ़ावै। कोटिक गऊ पुण्य सो पावै।।[9]

यह सुनकर खेमसरी सत्सुकृत जी के चरणों में गिर पड़ी और स्वयं को यमदूतों से दूर रहने तथा चित्त की मलिनता को दूर कर अन्तः प्रकाश हेतु प्रार्थना करने लगी। पुनः सत्सुकृत जी दया कर कहते हैं कि यह देश यम अथवा काल का देश है अतः बिना सतगुरु तथा नाम–जाप के सांसारिक काल–क्लेश नहीं मिट सकते। जब हम नाम या उपदेश पाकर अकाल पुरुष की डोरी से बँध जाते हैं तो यमराज उस जीव के लिए तिनका तोड़ देता है अर्थात् नाम (उपदेश) प्राप्त जीव से यमराज अपना नाता तोड़ देता है। इस प्रकार पुरुष रूप बीरा (बीरा से यहाँ कबीर की ओर भी संकेत है) अर्थात परम शक्तिशाली या परमचेतन पुरुष के नाम (उपदेश) को प्राप्त कर लें तो फिर पुनः संसार में आवागमन का चक्र नहीं रहता।

खेवसरि परै चरण पर आयी। हे साहिब मोहि लेहु बचाई।।
मो पर दया करहु प्रकाशा। अब न परौं काल के फाँसा।।
सुन खेमसरि यह यम को देशा। बिना नाम नहि मिटे अँदेशा।।
पान प्रवान पुरुष की डोरी। लेहि जीव यम तिनका तोरी।।
पुरुष नाम बीरा जो पावे। फिरके भवसागर नहिं आवे।।[10]

खेमसरी सत्सुकृत जी से न केवल स्वयं के लिए अपितु अपनी सन्तति के लिए भी नामदान हेतु याचना करने लगी जिससे कि उनकी भी मुक्ति का रास्ता स्पष्ट हो सके। वह अन्य जीवों को भी नामदान के लिए प्रेरित करने लगी। खेमसरी से प्रेरणा प्राप्त कर उसकी सन्तति एवं अन्य नर–नारी नम्रतापूर्वक नामदान हेतु चल दिये।

मोरे गृह अब धारिय पाऊ। मुक्ति सन्देश जीवन समझाऊ।।[11]
खेमसरी सब कहि समझाायी। जन्म सुफल करुरे सब भाई।।
जीवन मुक्ति चाहु जो भाई। सतगुरु शब्द कहो सो आई।।
यम सो येहि छुड़ावन हारे। निश्चय मानो कहा हमारे।।
सब जीवन परतीत दृढ़ावा। खेमसरी संग सब जिव आवा।।
आय गये सब चरण हमारा। साहिब मोर करो निस्तारा।।
जा ते यम नहिं मोहि सताये। जन्म–जन्म दुःख दुसह नसाये।।
अति अधीन देखेउ नर नारी। तासों हम अस वचन उचारी।।[12]

इसके बाद सत्सुकृत जी ने आरती का सामान मँगाया। पहले खेमसरी का तथा बाद में शेष अन्य सभी को नामदान किया (आरती की विस्तृत विधि आरती में दी जायेगी)

इस प्रकार राजा घोंधल तथा खेमसरी सहित बारह लोगों को सत्सुकृत जी ने नामदान (उपदेश) किया।

हंस द्वादश बोध सतगुरु, गयएउ सुख सागरा करी।
सतगुरु चरण सरोज परसेउ, विहंसिके अंकम भरी।।[13]

जिन जीवों की चेतना जग गई और जिन्होंने सत्स्वरूप के दर्शन कर लिए, चाहे वे केवल संख्या में बारह ही थे उन्हें सत्सुकृत जी ने हंस गति प्रदान कर सतलोक पहुँचा दिया।

जो जीवन परबोध्यो जाई। तिनकहँ दीन्हो लोक पठाई।।[14]

(ख) त्रेतायुग में निज चेतना

सतयुग में (मर्त्यलोक में) समयानुसार आयु पूर्ण कर सत्सुकृत जी पुनः सतलोक जाकर प्रभु के चरणों में लीन हो गये और पुनः परम पुरुष ने उन्हें आज्ञा दी। उनकी आज्ञा से पुनः वे जीवों के कष्टों को दूर करने के लिए मर्त्यलोक में आ गये। त्रेतायुग में संत कबीर का नाम मुनीन्द्र था।

सतयुग गयो त्रेतायुग आवा। नाम मुनीन्द्र जीव समुझावा।।[15]

तथा

त्रेतायुग जब ही पगु धारा। मृत्युलोक कीन्हों पैसारा।।[16]

मुनीन्द्र के रूप में जब इन्होंने नाम (उपेदश) देना प्रारम्भ किया तब यमराज को बहुत कष्ट हुआ और वह कहने लगा कि ये मुनीन्द्र जी जीवों को भवसागर से मुक्त करके; पुरुष के चेतन देश में पहुँचाकर मेरे संसार को ही उजाड़ रहे हैं –

इन भवसागर मोर उजारा। जिव लै जाहि पुरुष दरबारा।।
कैतो छलबल करे उपाई। ज्ञानि डर तिहि नाहिं ठराई।।
पुरुष प्रताप ज्ञानि के पासा। ताते मोइ न लागे फांसा।।
इनते काल कुछ पावै नाही। नाम प्रताप हंस घर जाई।[17]

त्रेतायुग में मुनीन्द्र (कबीर साहब जी) अनेक जीवों को काल–जाल अर्थात भव–बन्धन से मुक्ति तथा परमात्मा के मिलने का ढंग बताने लगे किन्तु सभी जीव इस प्रकार काल–जाल में फँसे हुए थे कि कोई भी उनकी बात को सुनने को तैयार

नहीं था। कोई विष्णु की तो कोई शिव की पूजा कर रहा था। कोई जीव कर भी क्या सकता है, वे तो खसम अर्थात् परमात्मा को छोड़कर यमदूतों के वशवर्ती हैं। मुनीन्द्र जी की इच्छा होती थी कि वे सभी जीवों को अनामी देश तक ले चलें किन्तु काल को दिये गये वचन (वायदे) के अनुसार वे किसी से हठ नहीं कर सकते थे अतः उन्होंने धीरे–धीरे नामदान देना आरम्भ किया।[18]

चारों ओर घूमने के बाद मुनीन्द्र जी रावण की नगरी लंका में पहुँचे जहाँ उनको विचित्र नामक एक व्यक्ति मिला। विचित्र ने उनसे प्रेमपूर्वक निःशंक होकर पूछा, तब उन्होंने उसे यह ज्ञान देना आरम्भ किया –

चहुँ दिश फिरि अयेउँ गढ़ लंका। भाट विचित्र मिल्योनिःशंका।।
तिनि पुनि पूछेउ मुक्ति संदेशा। ता सों कह्यो ज्ञान उपेदशा।।[19]

विचित्र की जिज्ञासा एवं भक्ति से प्रभावित हो दयालु मुनीन्द्र जी ने विचित्र को शब्द (शब्द चेतना) का भेद बताया। विचित्र को शब्द श्रवण हुआ परिणामतः उसके सभी भ्रम दूर हो गये और वह चरणों में शीश झुकाकर नामदान हेतु प्रार्थना करने लगा।

सुनि विचित्र तबहि भ्रम भागा। अति अधीन ह्वै चरणन लागा।।
कहे शरण मुहि दीजैं स्वामी। तुम सब पुरुष ससुख धामी।।
कीजै मोहि कृतारथ आजू। मोरे जिवकर कीजै काजू।।[20]

मुनीन्द्र जी ने दयाकर उस विचित्र को नामदान हेतु आरती की सारी वही विधि लिखवादी जो खेमसरी को लिखाई थी तथा नामदान के साथ सुमिरन, ध्यान आदि का ज्ञान कराया–

आनेहु भाव सहित सब साजा। आरति कीन्ह शब्द धुन गाजा।।
तृण तोरा वीरा तिहि दीन्हा। ताके गृह में काहु न चीन्हा।।
सुमिरण ध्यान ताहिसों भाखा। पूरण डोरि गोय नहिं राखा।।[21]

मन्दोदरी वृत्तान्त

विचित्र की पत्नी उसी समय रावण के महल में उसकी रानी मन्दोदरी के पास पहुँची और रानी से मुनीन्द्र जी के बारे में बताया कि उनके घर एक योगी आये थे जिनकी महिमा, तेज एवं दिव्य स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे महात्मा

श्वेतकला या दिव्य श्वेत तेज सम्पन्न थे। उनके अपार–उत्तम तेज का कथन नहीं किया जा सकता –

विचित्र वनिता गयी नृप ढिग, जायी रानी सो कही।।
इक योगी सुन्दर है महामुनि, तासु महिमा का कही।।
श्वेत कला अपार उत्तम, और नहि अस देखेउँ।।
पति हमारे शरण गहि तिहि, जन्म शुभ करित लेखेऊँ।।[22]

रानी उनके माहात्म्य से प्रभावित हो उनके दर्शन के लिए व्याकुल होने लगी और अपनी सेविका (वृखली) को साथ लेकर एक थाल में सोना, हीरे–जवाहरात आदि भरकर मुनीन्द्र जी के दर्शनों के लिए उसके साथ चल पड़ी। मन्दोदरी ने भक्तिपूर्वक मुनीन्द्र जी के चरणों में नमन किया तब मुनीन्द्र जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अभिभूत होकर मन्दोदरी कहने लगी कि यह दिन मेरे लिए अत्यन्त शुभ दिन है। मैंने ऐसा तपस्वी कभी नहीं देखा जिसका श्वेत वर्ण हो और जिसका सब कुछ श्वेत ही हो। आज मैं धन्य हो गई कि आप जैसे दिव्य चेतना सम्पन्न सन्त ने मुझे दर्शन दिया है। मेरा चित्त आप के चरणों में लग गया है –

चरण टेकिके नायो शीशा। तब मुनीन्द्र पुनि दीन्ह अशीशा।।
कहे मँदोदरि शुभ दिन मोरी। विनती करों दोउ कर जोरी।।
ऐसा तपसी कबहु न देखा। श्वेत अंग सब श्वेतहि भेखा।।
जिव कारज मम हो जिहि भांती। सो मोहि कहो तजो कुल जाती।।
हे समरथ मोहि करहु सनाथा। भव बूड़त गहि राखो हाथा।।
अब अति प्रिय मोहि तुम लागे। तुम दयाल सकल भ्रम भागे।।[23]

मन्दोदरी मुनीन्द्र जी से प्रार्थना करने लगी कि हे समर्थ सन्त ! कुलजाति का ध्यान न करते हुए, जिस प्रकार सम्भव हो, इस जीवात्मा को कृतार्थ करिये।

तब मुनीन्द्र जी ने कहा कि हे रावण की प्रिय वधू सुनो। सतनाम के प्रताप से यम के फन्दे कट जाते हैं। जो उस नाम (शब्द) का श्रवण कर लेता है वह आवागमन के चक्र से रहित हो जाता है।

सुनहु वधू प्रिय रावण केरी। नाम प्रताप कटे यम बेरी।।
ज्ञान दृष्टिसों परखहु भाई। खरा खोट तोहि देऊँ चिन्हाई।।
पुरुष अमान अजर मनिसारा। सो तो तीन लोकते न्यारा।।
तेहि साहिब कहँ सुमिरे कोई। आवागमन रहित सो होई।।[24]

कबीर साहब धर्मदास से त्रेतायुग की इस घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मंदोदरी ने जब शब्द–श्रवण किया तो उसके सारे भ्रम दूर हो गये। उसने प्रेम और पवित्र मन से उस शब्द को ग्रहण किया। वह नामदान के लिये हठ करने लगी। वह ऐसी गद्‌गद् हुई जैसे कोई दरिद्र (रंक) धन प्राप्त कर गद्‌गद् हो जाता है। रानी मनुीन्द्र जी के चरणों में नतमस्तक हो गई। उसके बाद मुनीन्द्र जी ने महल में प्रवेश किया –

सुनतहि शब्द तासु भ्रम भागा। गह्यो शब्द शुचिमन अनुरागा।।
हे साहिब मोहि लीजै शरणा। मेटहु मोर जन्म अरु मरणा।।
दीन्हों ताहि पान परवाना। पुरुष डोर सोंप्यो सहिदाना।।
गदगद भई पाय घर डोरी। मिलि रंकहि जिमि द्रव्य करोरी।।
रानी टेकेउ चरण हमारा। तो पाछे महलन पगुधारा।।[25]

रानी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मुनीन्द्र जी ने रावण के महल की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने द्वारपाल से कहा कि तुम राजा रावण को यहाँ ले आओ। द्वारपाल ने उत्तर दिया कि वह रावण तो महा प्रचण्ड स्वभाव के हैं। मैं उनसे यह विनती करने में समर्थ हूँ क्या। वे महाराज रावण तो भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी शक्ति में विश्वास ही नहीं करते। उन्हें अपने इष्ट का बड़ा अभिमान है और वे क्रोधी स्वभाव के भी हैं। मैं यदि उनसे यहाँ आने की प्रार्थना करुँगा तो वे मुझे पलभर में ही मार गिरायेंगे।

तब मैं रावण पँह चलि आयो। द्वारपाल सों वचन सुनायो।।
तासों एक बात समुझाई। राजा कहँ तुम आव लिबाई।।
तब पौरिया विनय यह लाई। महा प्रचण्ड है रावण राई।।
शिव बल ह्रदय शंकर नहिं आने। काहू केर बचन नहिं माने।।
महागर्व अरु क्रोध अपारा। कहों जाय मोहे पल में मारा।।[26]

तब मुनीन्द्र (कबीर जी) बोले – मेरे कहने से तुम रावण के महल में जाओ, मैं तुम्हें यह आश्वासन देता हूँ कि तुम्हारा किसी भी प्रकार का अहित न होगा। हमारे वचनों को सत्य मानकर तुम अन्दर यह समाचार पहुँचाओ कि द्वार पर एक महात्मा आये हैं। तत्क्षण द्वारपाल रावण के महल में पहुँचा और दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना

करने लगा कि हे महाराज एक सिद्ध पुरुष द्वार पर पधारे हैं और वे आपसे मिलना चाहते हैं –

मानहु वचन जाव येहि बारा। रोम बंक नहिं होए तुम्हारा।।
सत्य बचन तुम हमरो मानो। रावण जाए तुरत तुम आनो।।
ततक्षण गा प्रतिहार जनायी। द्वै कर जोरे ठाड़ रहाई।।
सिद्ध एक तो हम पँह आयी। ते कहै राजहि लाव बलाई।।[27]

यह सुनकर रावण बहुत क्रोधित होने लगा और अहंकारवश बोला कि शिव–पुत्र भी मेरा दर्शन नहीं कर सका और एक भिक्षुक के कहने पर तू मुझे बुलाने आ गया –

सुन नृप क्रोध कीन्ह तेहिबारा। तै मति हीन आहि प्रतिहारा।।
x x x x x
दर्श मोर शिव सुत नहिं पावत।। मोकहँ भिक्षुक कहा बुलावत।।[28]

पुनः रावण; उन महात्मा के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा से द्वारपाल से कहने लगा कि उनका रूप, रंग आदि कैसा है।

हे प्रतिहार सुनहु मम बानी। सिद्ध रूप कहो मोहि बखानी।।
वर्णन है कौन–कौन तेह भेषा। मो सन दृष्टि जस येहि देखा।।[29]

द्वारपाल बोला हे महाराज ! उन महात्मा के वस्त्र, रंग, मस्तक सब कुछ श्वेत हैं और वे मस्तक पर तिलक लगाये हुए हैं। चन्द्रमा के समान उनका दिव्य श्वेत वर्ण है, वैसे ही वे श्वेत वस्त्रधारी हैं –

अहो रावण तेहि श्वेत रूपा। श्वेत हि माथा तिलक अनूपा।।
शशि समान है रूप विराजा। श्वेत वसन सब श्वेत हि साजा।।[30]

(प्रतिहार – सेवक होने के नाते अहो रावण कहकर सम्बोधित नहीं कर सकता अतः अनुराग सागर सत्संग केहर सिंह के अनुसार यहाँ हे राजा शब्द कोष्ठक में दिया है।)

मन्दोदरी राजा से अहंकार त्याग कर उन महात्मा से मिलने के लिये प्रार्थना करने लगी –

छोड़हु राजा मान बड़ाई। चरण टेकि जो शीश नवाई।।[31]

यह सनुकर रावण क्रोधित होने लगा और हाथ में तलवार लेकर महात्मा मुनीन्द्र का सिर काटने चल दिया। जहाँ मुनीन्द्र जी खड़े थे वहाँ आकर रावण ने उन

पर वार करने को सत्तर बार तलवार चलाई। मुनीन्द्र जी एक तिनके की ओट से बचते रहे और रावण के सत्तर तलवार के वार का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

रावण सुनत क्रोध अति कीन्हा। जरतु हुताशन मनु घृत दीन्हा।
रावण चला शस्त्र लै हाथा। तुरत जाय तिहि काटों माथा।
मारों ताहि–सीस खसि परई। देखों भिक्षुक मोर का करई।।
जहँ मुनीन्द्र तहँ रावण राई। सत्तर वार अस्त्र कर लाई।।
लीन्ह मुनीन्द्र तृण कर ओटा। अति बल रावण मारै चोटा।।[32]

यह सब देखकर मन्दोदरी रावण से घमण्ड छोड़; मुनीन्द्र जी की चरण शरण में आने की प्रार्थना करने लगी जिससे वह अटल राज्य का सुख भोग सके –

कहे मंदोदरि सुनहु राजा, गर्व छोड़ो लाज हो।।
पांव टेकहु पुरुष के गहि, अटल होवै राज हो।।[33]

रावण बोला कि वह तो शिवोपासक है और उन्हीं की चरण–शरण में है क्योंकि उन्होंने ही उसे अटल राज्य दिया हे।

सेवा करों शिव जाय, जिन मोहे राज अटल दियो।
ताकर टेकों पांय पल, दण्डवत क्षण ताहि को।।[34]

यह सुन कर मुनीन्द्र जी बोले हे रावण तू अति घमण्डी है। तू हमारा रहस्य नहीं समझता। त्रेतायुग में जब राम आयेंगे तो वे तुझे मारेंगे। तेरी ऐसी दुर्गति होगी कि तेरा माँस श्वान भी नहीं खायेंगे और उसके बाद वे अवध को चल दिये।

सुन अस वचन मुनींद्र पुकारी। तुम हो रावण गर्व अहारी।।
भेद हमारा तुम नहिं जानी। वचन एक तोह कहों निशाना।।
रामचन्द्र मारें तुंहि आयी। मांस तुम्हारा श्वान नहिं खायी।।
रावण को कीन्हों अपमाना। अवध नगर पुनि कीन्ह पयाना।।[35]

इसके बदले (स्थान पर) पुराने गन्थों में ऐसा लिखा है–

तीन जीव परमोधि लंका, तब अवध नगर हि आयऊ[36]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि मुनीन्द्र जी ने लंका में तीन जीवों को परमोधि अर्थात् प्रबोध किया अर्थात् नाम देकर उनको भवबन्धन से मुक्त कराया।

मधुकर वृत्तान्त

मुनीन्द्र जी रावण का अपमान करके अवध जा रहे थे तभी मार्ग में उन्हें मधुकर नामक दरिद्र विप्र मिला। मधुकर ने शीश नवाया और बहुत दीनतापूर्वक उन्हें अपने

घर ले गया। उसने मुनीन्द्र जी से बहुत प्रेम किया अतः उन्होंने उसे चिरज्ञान अर्थात् सुरत शब्द का ज्ञान दिया और शब्द ज्ञान के साथ ही मधुकर को मुनीन्द्र जी ने चेतन–सागर अमृत सरोवर का पान कराया जिससे उसका शरीर (आत्मा) हंस हो गया। उसकी भक्ति के वशीभूत हो मुनीन्द्र जी उससे पुरुष–सन्देश अर्थात आत्मा–परमात्मा विषयक ज्ञान (शब्द का उपदेश) आदि का कथन लगे जिससे मधुकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। जिस प्रकार पौधा जल के बिना तपने या सूखने लगता है तथा जलसिंचन से हरा भरा हो जाता है उसी प्रकार मधुकर का परमात्मा से मिलने को आतुर हृदय जो सूख रहा था, मुनीन्द्र जी के मिलन और उनकी दया वृष्टि से आह्लादित होने लगा।

रावण को अपमान करी, तब अवध नगरहि आयऊ।।
विप्र मधुकर मिलेउ मार्ग, दरश तिन मन पायऊ।।

x x x x x

रंक विप्र थिर ज्ञान, बहुत प्रेम मो सों किया।।
शब्द ज्ञान सहिदान, सुधासरित विहँसत वदन।।
जिभि अंकुर तपै बिन वारी।। पूर्ण उदक जो मिले खरारी।
अम्बु मिलत अंकुर सुखमाना। जैसेहि मधुकर शब्दहि जाना।।[37]

सतपुरुष के लीलावैविध्य का श्रवण कर मधुकर महा आनन्दित हुआ और मुनीन्द्र जी से सतलोक के दर्शन हेतु आग्रह करने लगा। तब मुनीन्द्र जी की दया से उसकी आत्मा सतलोक तक चढ़ गई। शरीर उसका नीचे ही था। सतलोक के वैभव से वह बहुत हर्षित हुआ और उसका विश्वास दृढ हुआ। पुनः नीचे आने पर वह उनके चरणों में गिर गया और कहने लगा आपने मुझे परम आत्मतृप्ति करा दी।

पुरुष भाव सुनतेहि हरषंता। मोकहं लोक दिखावहु संता।।

x x x x x

राख्यो देह हंस लै धाये। अमर लोक लै तिहि पहुँ चाये।।
शोभा लोक देख हरषाना। तब मधुकर को मन पतियाना।।
पर्योचरण मधुकर अकुलाई। हे साहिब अब तृषा बुझाई।।[38]

पुनः मधुकर मुनीन्द्र जी से अपने परिवार के अन्य सोलह सदस्यों पर दया करते हुए उन्हें नाम (उपदेश) दान हेतु प्रार्थना करने लगा–

मधुकर घर षोडश जिव रहई। पुरुष संदेश सबनसों कहई।।
गहहु चरण समरथ के जाई। यही लेहिं जमसों मुक्ताई।।
मधुकर वचन सब मिल माना। मुक्ति जान लीन्हों परवाना।।[39]

इस प्रकार मधुकर को बहुत दीन–अधीन देख उस पर अनुग्रह करते हुए, मुनीन्द्र जी ने उसे चौका (आरती विधि) बताकर उन सोलह जीवों को नामदान कर सत्तपुरुष के दर्शन कराये जिससे उनके भी जन्म–मरण के बंधन कट गये। सभी हंस जीव उनसे कुशल मंगल पूछने लगे और कहने लगे जो यहाँ आया वही सचमुच कुशल है।

षोडश जिव परवाना पाये। तिन कहँ लै सतलोक पठाये।।
x x x x x
परसे चरण पुरुष के हंसा। जन्म मरण को मेटेउ संसा।।
सकल हंस पूछी कुशलाई। कहु द्विज कुशल भये अब आई।।
धर्मदास यह अचरज बानी।। गुप्त प्रगट चीन्हे सोई ज्ञानी।।
हंसन अगर चीर पहिराये। देह हिरम्मर लखि सुख पाये।।
षोडश भानु हंस उजियारा। अमृत भोजन करे अहारा।।
अगर वासना तृप्त शरीरा। पुरुष दरश गदगद मति धीरा।।
यहि विधि त्रेतायुग को भावा। हंस मुक्त भये नाम प्रभावा।।[40]

(ग) द्वापरयुग में निज चेतना

त्रेतायुग के पश्चात् कबीर साहब अपने उद्देश्य को पूर्ण करके ऊपर जाकर पुरुष के चरणों में लीन हो गये। कबीर साहब पुनः अपने शिष्य धर्मदास से कहते हैं कि मैं पुरुष के चरणों में ध्यानमग्न था, तभी तीसरी बार परम शक्ति की आवाज आई, उन्होंने मुझसे कहा ज्ञानी जी, जीव कल्याण हेतु (द्वापर युग में) पुनः संसार में जाओ।

त्रेतागत द्वापर युग आवा। तब पुनि भयो काल परभावा।।
द्वापर युग प्रवेश भा जब ही। पुरुष अवाज कीन्ह पुनि तबही।।
ज्ञानी वेगि जाहु संसारा। यमसों जीवन करहु उबारा।।
काल देत जीवन कहँ त्रासा। काटो जाय तिनहि को फांसा।।
कालहि मेट जीव लै आवो। बार बार का जगहि सिधावो।।[41]

इस द्वापर युग में इनका नाम करुणामय था। ज्ञानी जी उन पुरुष से आज्ञा पूछने लगे –

तब हम कहा पुरुष सों बानी। आज्ञा करहु शब्द परवानी।।

परम पुरुष ने उनसे जीवों को नाम–दान देकर मुक्त कराने को कहा। साथ ही यह भी कहा कि मुझमें और तुममें जल–तरंग की भाँति कोई अन्तर नहीं है।

कहा पुरुष सुनु योग संतायन। शब्द चिताय जीव मुक्तायन।।
जो अब काल कीन्ह अन्याई। हो सुत तुम मम वचन नसाई।।
x x x x x
हमसो तुमहिं अन्तर नाहीं। जिमि तरंग जल माहिं समाही।।
हमहिं तुमहिं जो दुइकर जाना। ता घट यम सब करि है थाना।।[42]

इन्द्रमती वृत्तान्त

परम पुरुष की आज्ञा से करुणामय जी द्वापर युग में मर्त्यलोक में अवतरित हुए और जीवों के कल्याणार्थ उन्हें नामदान हेतु प्रेरित किया। करुणामय जी राजा चन्द्र विजय के शहर गिरनालगढ़ पहुँचे। चन्द्रविजय की रानी के मन में साधु–महात्माओं के लिए बहुत श्रद्धा थी। वह महल की अटारी पर चढ़कर देखती रहती थी कि यहाँ से कोई संत–महात्मा निकलें तो वह उनके दर्शन करे। करुणामय जी अन्तर्यामी थे और रानी इन्द्रमती की भक्ति को समझते हुए वे उसी रास्ते से गुजरने लगे। इन्द्रमती ने जब देखा तो अपनी सेविका को कहा – तुरन्त नीचे जाकर महात्मा को लेकर आओ। बृखली (सेविका) आकर उनके चरणों में शीश झुकाते हुए बोली कि महारानी आपको महल में आमन्त्रित कर रही है, वे आपके दर्शन के लिए व्याकुल हैं –

गढ़ गिरिनार तबहि चल आये। चंद्रविजय नृप तहां रहाये।।
तेहि नृप गृहरह नारि सयानी। पूजै साधु महातम जानी।।
चढ़ी अटारी वाट निहारे। संतदरश कहँ कायागारे।।
रानी प्रीति बहुत हम जाना। तेहि मारग कहँ कीन्ह पयाना।।
मोहि पहँ दृष्टि परी जब रानी। वृषली रसना कह यह बानी।।
मारग बेगि जाहु तुम धाई। देखहु साधु आनु गहि पाई।।
वृषली आय चरण लपटानी। नृप वनिता मुख भास सयानी।।
कही वृषली रानि अस भाषा। तुम दर्शन कहँ अभिलाषा।।
देहु दरश मोहि दीन दयाला। तुम्हारे दरश मिटे सब शाला।।[43]

करुणामय जी बृखली से बोले कि राजमहल में हमारा क्या काम। राज्य कार्य में सम्मान, प्रशंसा तथा अहंकारादि भाव होते हैं। हम साधु हैं अतः राजा के महल में हमारा क्या काम हो सकता है।

राज काज है मान बड़ाई। हम साधु नृप गृह नहिं जाई।।

यह बात सेविका ने रानी से जाकर ज्यों की त्यों कह दी। इन्द्रमती ने जब साधु करुणामय की यह बात सुनी तो तुरन्त उठकर दौड़ी–दौड़ी उनके पास आयीं और उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया साथ ही उनसे राजमहल में पधारने की प्रार्थना की।

हे साहिब मोपर करु दाया। मोरे गृह अब धरिये पाया।।[44]

रानी इन्द्रमती की श्रद्धा भक्ति से करुणामय जी राजमहल में पधारे। रानी ने उन्हें सिंहासन पर विराजमान कर उनका चरण–प्रक्षालन किया तथा चरणामृत का पान किया –

प्रीति देखि तहि भवन सिधारे। दीन्ह सिंहासन चरण खटाये।।
दीन्ह सिंहासन चरण पखारी। चरण परछालन अंगोछा धारी।।
चरण धोये पुनि राखे सिरानी। पट पद पोंछ जन्म शुभ जानी।।[45]

इन्द्रमती करुणामय जी से अपना परिचय देने हेतु प्रार्थना करने लगी –

तुम प्रभु गम अपार, वरनो मोते कितभये।।
मेटहु तृषा हमार अपनो, परिचय मोहि कह।।[46]

तब गुण ग्राहिणी इन्द्रमती से कबीर साहब ने कहा –

देश हमार न्यार तिहुँ पुरते। अहिपुर नरपुर अरु सुरपुरते।।
तहाँ नहीं यमकेर प्रवेशा। आदि पुरुष को जहवां देशा।।
सत्यलोक तेहि देश सुहेला। सत्यनाम गह कीजे मेला।।
अद्भुत ज्योति पुरुष की काया। हंसन शोभा अधिक सुहाया।।[47]

अर्थात हमारा लोक मर्त्यलोक और स्वर्गलोक दोनों से पृथक् है। वहाँ आदि पुरुष (आदि चेतन शक्ति) विराजमान है, वहाँ यमदूत नहीं जा सकते। वह सतलोक है जिसका ज्ञान सतनाम से मेल या उसमें लय करने से होता है। उन आदि पुरुष की काया अद्भुत ज्योति है और जहाँ हंस विलास करते हैं।

यह सुन इन्द्रमती हाथ जोड़कर यमराज से मुक्ति हेतु प्रार्थना करने लगी।

जोरि पाणि बोली बिलखायी। प्रभु यम ते लेहु छुड़ाई।।
राजपाट सब तुम पर बारों। धन सम्पत्ति यह सब तज डारों।।

देहु शरण मोहि दीन दयाला। बंदिछोर मुहिं करहु निहाला।।[48]

करुणामय जी ने इन्द्रमती को आश्वासन दिया तथा चौका, आरती आदि क्रियाओं के साथ शब्द ध्वनि, सुमिरन, ध्यान आदि का ज्ञान दिया –

इन्द्रमती सुन वचन हमारा। छोरों निश्चय बंदि तुम्हारा।।
चीन्हेउ मोहि परतीत दृढ़ाना। अब देहुँ तोहि नाम परवाना।।[49]

इन्द्रमती की प्रार्थना पर कबीर साहब ने उससे खेमसरी की भाँति चौका करने तथा अन्य सामान लाने को कहा।

चौका कर लेवहु परवाना। पीछे कहों अपन सहिदाना।।
आनेउ सकलसाज तब रानी। चौका बैठि शब्द ध्वनि ठानी।।
आरति कर दीन्हा परवाना। पुरुष ध्यान सुमिरण सहिदाना।।
उठि रानी तब माथ नवायी। ले आज्ञा परवानी पायी।।[50]

रानी इन्द्रमती राजा चन्द्र विजय से महात्मा करुणामय जी के दर्शन करने का आग्रह करती है तब राजा कहता है कि तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो अतः हम दोनों की भक्ति कोई अलग–अलग नहीं है। मैं पहले तुम्हारी भक्ति का प्रभाव तो देख लूँ। जब रानी ने देखा कि राजा पर उसकी बातों का कोई प्रभाव नहीं है तो वह पुनः करुणामय जी के पास आ गई। तब करुणामय जी ने उसे काल चरित्र समझाया। करुणामय जी ने कहा कि "काल भयानक रूप धारण कर तुम्हारे पास आयेगा अर्थात वह तक्षक सर्प बनकर तुम्हें डसेगा। अतः उन्होंने विरहिली शब्द लिखा दिया –

सुन रानी एक वचन हमारा। कालहु कला करे छल धारा।।
काल व्याल है तोपहँ आयी। डसे तोहि सो देउँ बतायी।।
ता कह शिष्य कीन्ह मैं जानी। डसे काल तक्षक है आनी।।
तब हम तो कहँ मंत्र लखायी। कालगरल तब दूर परायी।।
दीन्हों शब्द विरहुली ताहीं। काल गरल जेहि व्यापे नाहीं।।[51]

पुनः करुणामय जी रानी से कहते है कि – उससे बच जाने पर भी यमदूत छल करेंगे। वह मेरे जैसा श्वेत वर्ण धारण कर तुम्हारे पास आयेगा ओर कहेगा कि हे रानी तुम मुझे पहचान लो मैं तुम्हारा करुणामय (कबीर) हूँ। पूर्व जन्म के कर्मों के कारण वह तुमसे छल करेगा।

यहि विधि काल ठगे तोहि आई। काल रेख सब देउ बतायी।।

पुनः वे काल का रूप बताते हुए कहते हैं कि उसका मस्तक छोटा होगा तथा चक्षु अर्थात् नेत्रों का रंग भी अलग होगा। रानी इन्द्रमती यह सुनकर घबरा गई और करुणामय जी से प्रार्थना करने लगी कि यह तो काल देश है। यहाँ काल चेतना है, मुझे इस काल चेतना से निकालकर दयालदेश अर्थात अपने देश ले चलिये। रानी के प्रार्थना किये जाने पर करुणामय जी ने उसे उपाय बताते हुए कहा कि जब काल तुम्हें छले तो जो 'नामदान' किया है, उसका सुमिरन करना। जैसे सिंह को देखकर हाथी डर जाता है उसी प्रकार यमदूत 'नाम' के सुमिरन से भागने लगते हैं।

काल कला प्रचण्ड देखो, गज रूप धर जग आवई।।
देखि केहरि गज त्रास माने, धीर बहुरि न लावई।।[52]

रानी इन्द्रमती कहने लगी कि हे साहब मैं तो तुम्हीं को जानती हूँ और मैंने तुमको पहचान लिया है किन्तु मेरी एक बिनती है कि काल जब मुझे सताने लगे तो आप मेरी आत्मा को अपने लोक ले जाना।

काल व्याल हुए मोहिं सताई। अरु पुनि हंस रूप भरमायी।।
तब पुनि साहिब मोपहँ आऊ। हंस हमार लोको लै जाऊ।।[53]

तब करुणामय जी कहते हैं कि नाम सुमिरते रहने के कारण काल वहाँ ठहर नहीं पायेगा और पीछे से हम आकर तुम्हारी आत्मा को सतलोक ले जायेंगे –

तेहि पीछे हम तुम लग आवैं। हंस हमार लोक पहुँचावैं।।
शब्द तोहि हम दीन्ह लखाई। निशदिन सुपरी चित्त लगायी।।[54]

इतना कहकर करुणामय जी गुप्त हो गये और सांयकाल तक्षक रानी के आने से पूर्व आकर उसके तकिये के नीचे छुप गया। जैसे ही रानी पलंग पर लेटी, तक्षक ने उसे डस लिया। इन्द्रमती ने राजा को जोर से आवाज दी कि तक्षक ने उसे डस लिया है। आवाज को सुनकर व्याकुल हुआ राजा तुरन्त दौड़कर आया तथा वैद्य या साँप के काटने वाले का इलाज करने वाले को आदेश दिया। वे विष दूर करने वाले को बहुत से परगने (राज्य का भाग) इनाम देने की घोषणा करने लगे।

सुन राजा व्याकुल ह्वै धावा। गुणी गारुणी वेगि बुलावा।।
राय कहै मम प्रणापियारी। लेहु चिताय जो अबकी बारी।।
तक्षक गरल दूर हो आयी। देहुँ परगना तोहि दिखायी।।[55]

रानी इन्द्रमती करुणामय (कबीर) का ध्यान कर बिरहली शब्द का जाप करने लगीं। वह राजा से कहने लगी सभी गारुणी तथा वैद्य आदि को यहाँ से भगा दीजिये

किन्तु आप यहाँ से न जाना। मेरे सतगुरु करुणामय जी ने मुझे जो बिरहली या शब्द–मन्त्र नामदान में दिया था, मैं उसी का जाप कर रही हूँ और विष का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ है अर्थात सुमिरन से मुझ पर विष प्रभावहीन हो गया है।

शब्द बिरहुली जपेउ रानी, सुरति साहब राखि हो।।
वैद गारुणि दूर भाग्या, दूर नरपति नाहिं हो।।
मन्त्र मोहि लखाय सतगुरु, गरल मोहि न लागई।
होत सूर्य प्रकाश जेहि क्षण, अन्ध घोर नशावई।।[56]

पुनः वह अपने भाग्य सराहते हुए बार–बार प्रार्थना करती हुई कहती है कि यह मेरे गुरु का ही प्रताप है जिसके प्रभाव से मैं विष के प्रभाव से रहित होकर खड़ी हूँ। राजा उसको देखकर प्रसन्न होने लगा।

ऐसे गुरु हमार, बार–बार बिनती करौं।
ठाढ़ भयी उठि नार, राजा लखि हरषित भयो।।[57]

यमदूत; देवत्रय–ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के पास पहुँचे और उन्हें बताया कि नाम के सुमिरन के कारण रानी पर तक्षक के विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ।

कहै दूत बिष तेज न लागा। नाम प्रताप बंध लो भागा।।[58]

तब विष्णु देव ने यमदूतों को सलाह दी कि वे करुणामय जैसी श्वेत वेशभूषा धारण करके पूरी तरह उनका रूप धारण कर वहाँ जायें। यमदूत ने वैसा ही किया और रानी के पास जाकर बोले रानी मैंने जो नामदान किया और तुमने जो नाम जाप किया उसी का यह प्रभाव है कि मैं यहाँ उपस्थित हो गया हूँ, तुम उदास क्यों हो रही हो।

रानी सों अस बचन प्रकाशा। तुम कस रानी भई उदासा।

x x x x x

ज्ञानी नाम हमारे रानी। मरदो काल करों पिसमानी।।[59]

इसके बाद काल कहने लगा कि तक्षक के द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली है। अब तुम पलंग और राज्य की मान–प्रतिष्ठा छोड़कर मेरे साथ चलो। मैंने तुम्हें परम चेतना को लखा दिया, अब तुम मेरे साथ चलो।

इन्द्रमती ने सोचा जो काल और दयाल का भेद ज्ञानी जी ने बताया वह सब कुछ स्पष्ट है। उन्होंने कहा था काल का मस्तक छोटा होता है, जर्द श्वेत–रंग की

आँखे होती है और वह पलकों को झपकता नहीं है। इसका छोटा मस्तक देखकर प्रतीत होता है कि यह काल ही है।

तीनों रेख देख चक माही। जर्द सेत अरु राता आहीं।।
मस्तक ओछ देख पुनि ताको। भयो प्रतीत बचनको साको।।[60]

इन्द्रमती यमदूत को पहचान कर उसे अपने देश वापस जाने को कहती है वह समझ गई कि कौवा हंस नहीं बन सकता।

काग रूप जो बहुत बनाई। हंस रूप शोभा किमि पाई।।
तस हम तोरा रूप निहारा। हैं समर्थ बड गुरु हमारा।।

यह सुनकर यमदूत बहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि मैं तुम्हें बार–बार समझा रहा हूँ किन्तु यह स्त्री समझ नहीं रही है, इसकी बुद्धि फिर गई है। इस प्रकार बोलते हुए वह कालदूत इन्द्रमती के पास आया और उसके गाल पर जोर से थप्पड़ मारा। वह थप्पड़ उसने इतनी जोर से मारा कि रानी उलट कर पलंग से नीचे गिर पड़ी।

यह सुन दूत रोष बड़ कीन्हा, इन्द्रमती सों बोले लीन्हा।।
बार–बार तोकहँ समुझावा, नाहिंन समुझत मती हिरावा।।
बोला बचन निकट चलि आवा, इन्द्रमती पर थाप चलावा।।
थाप चलाय सुमुख पर मारा, रानी खसि परि भूमि मझारा।।[61]

कष्ट में इन्द्रमती करुणामय जी द्वारा कहे गये बचनों का स्मरण करती है और सहायतार्थ प्रार्थना करती है तथा उदास होकर सतपुरुष के दर्शन की अभिलाषा प्रकट करती है। रानी की पुकार पर कबीर साहब तुरन्त वहाँ प्रकट होते हैं। कालदूत भाग जाता है। कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि उसकी पुकार पर हम रानी की आत्मा को मानसरोवर तथा सतलोक तक ले गये। तदनन्तर उन्होंने कबीर सागर में स्नान कराया और अमृत चखाया –

प्रथमहिं रानी कीन्हो संगा। मेट्यो काल कठिन परसंगा।।
तबही टीका पूरा भराया। ले रानी सतलोक सिधाया।।
ले पहुँचायो मान सरोवर। जहवां कामिनि करहिं कतोहर।।
अमी सरोवर अमी चखाओ। सागर कबीर पांव परायो।।
तेहि आगे सुरति को सागर। पहुँची रानी भई उजागर।।
लोक द्वार ठाढ़े तब कीनी। देखत रानी अति सुख भीनी।।

हंस धाय अंक में लीन्हा। गावहिं मंगल आरति कीन्हा।।[62]

चेतना से सरावोर इन्द्रमती ने हंसों (हंसात्माओ) के दर्शन किये और हंसों ने भी उस इन्द्रमती की आत्मा का स्वागत किया और सम्मान में मंगल गान किया और कहने लगे कि यह जीवात्मा भी धन्य हो गई जिसने सतगुरु के स्वरूप को पहचाना। हंस जीव इन्द्रमती कबीर (करुणामय) जी के साथ चलकर सतपुरुष के चरणों में शीश नमन करती है। इन्द्रमती और वहाँ के सभी हंस मिलकर उस चेतन देश में मंगल गान कर प्रसन्न होने लगे।

चलो हंस तुम हमरे साथा। पुरुष दरश करि नावहु माथा।
इन्द्रमती आवहु संग मोरे। पुरुष दरश होवें अब तोरे।।
इन्द्रमती अरु हंस मिलाहीं। करहिं कुतूहल मंगल गाहीं।।
चलत हंस सब अस्तुति लावें। अब तो दरश पुरुष को पावें।।[63]

कबीर साहब सतपुरुष से उस हँसात्मा को दर्शन देने के लिए प्रार्थना करते हैं। कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि सतपुरुष बिगसित हो उठे, प्रसन्नता से खिल उठे।

बिकसयो पुहुप उठी अस बानी। सुनहु योग संतायन ज्ञानी।
हंसन कहँ अब आव लिवाई। दरश कराइ लेउ तुम आई।।[64]

सभी हंसों ने एक साथ उस परमचेतन शक्ति के दर्शन किये और सभी ने जब दण्डवत् प्रणाम किया तब परम चैतन्य पुरुष ने चार अमृत फल दिये और उन्हें सभी में बाँटने को कहा।

करहिं दण्डवतहंस सब ही, पुरुष पहँ चित लाइया।
अभी फल तब चार दीन्हों, हंस सब मिल पाइया।।[65]

सभी हंस, पुरुष की चेतना में विलास करने लगे। रानी इन्द्रमती के सभी दुःख दूर हो गये और रानी की चेतना सोलह सूर्यों के बराबर हो गई।

जस रवि के परकाश, दरश पाय पंकज खुले।
तैसे हंस विलास, जन्म–जन्म दुःख मिट गयो।।[66]
अब दुख द्वन्द तोर मिटि गयऊ। षोडश भानु रूप पुन भयऊ।।[67]

इन्द्रमती उस लोक में परम पुरुष और करुणामय को एकरूप देख आश्चर्य चकित हो गई।

पुरुष कान्ति जब देखेउ रानी। अद्‌भुत अमी सुधा की खानी।
गदगद होय चरण लपटानी। हंस सुबुद्धि सुजन गुण ज्ञानी।।
दीनों शीश हाथ जिव मूला। रवि प्रकाश जिमि पंकज फूला।।[68]

करुणामय जी रानी इन्द्रमती से बोले कि पुरुष ने तुम्हारे ऊपर ऐसी कृपा की है कि तुम्हारे समस्त दुःख–द्वन्द्व मिट गये और तुमने सोलह सूरज के बराबर तेज–रूप प्राप्त कर लिया है।

अब दुख द्वंद तोर मिटि गयऊ। षोडश भानु रूप पुनि भयऊ।।
ऐसे पुरुष दया तोहि कीन्हा। संशय सोग भेंटि तुव दीन्हा।।[69]

तब इन्द्रमती बोली कि हे साहिब मेरी एक और प्रार्थना है। आपके चरण–कमलों की सेवा से मैंने पुरुष के दर्शन प्राप्त किये है। यहाँ आकर मेरे मन में पुनः मोह जाग उठा है कि मेरा राजा भी यहाँ होना चाहिये। मेरा राजा चन्द्र विजय काल के मुख में जा रहा है।

मो कहँ भयो मोह अधिकारा। राजापति आहि हमारा।।
आनहु ताहि हंसपति राई। राजामोर कालमुख जाई।।[70]

करुणामय जी के यह कहने पर कि राजा ने नाम–दान नहीं लिया और वह भक्ति भाव से रहित; सत्त्वहीन होकर संसार में भटक रहे हैं तब इन्द्रमती बोली कि मर्त्यलोक में रहते हुए मैं पति की सहमति से ही साधु सन्तों की सेवा कर सकी। मेरे सेवा–भाव से राजा बहुत प्रसन्न होता था। मैं राजा की बहुत प्यारी रानी थी। उन्होंने मुझे कभी भी सेवा कार्य से नहीं रोका। साधु सन्तों की सेवा से ही मैंने शब्द मार्ग प्राप्त किया। यदि राजा ही मुझे रोकता तो मुझे नाम–दान कैसे मिलता।

राय की हम हती प्यारी, मोहिं कबहुँ न बरजेऊ।।
साधु सेवा कीन्ह नित हम, शब्द मारग चीन्हेंऊ।।
चरण मो कहँ मिलत कैसे, मोहि बरजत रायजो।।
नाम पान न मिलत मोकहँ, कैसे सुधरत काज जो।।[71]

पुनः इन्द्रमती कहने लगी कि राजा इस समय यमराज के चंगुल में फँसा हुआ है। कृपया आप उसे काल–बन्धन से मुक्त करिये।

धन्य राय सुज्ञान, आनहु ताहि हंस।
तुम गुरु दया निधान, भूपति बन्द छुड़ाइये।।[72]

इन्द्रमती की बात सनुकर करुणामय (कबीर) जी बहुत हँसे और तुरन्त अवध के समीप गढ़ गिरनाल पहुँचे। वहाँ राजा को चारों ओर से यमदूत घेरे हुए थे और उनको अनेक प्रकार की यातनाएं दे रहे थे। उन्होंने राजा को एक गढ़ढे में फेंक दिया। तब कबीर साहब बोले, इसको छोड़ दो। तुम इसे प्रताड़ित नहीं कर सकते। मैं इसे लेने आया हूँ।

सुन ज्ञानी बहुतै विहँसाये। चले तुरंग बार नहिं लाये।।
गढ़ गिरनार बोगी चल आया। नृपति केरि अवधी नियराया।।
घेर्‌यो ताहि लेन यमराई। राजहि देत कष्ट बहुताई।।
राजा परे गाढ़ महँ आया। सतगुरु कहे तहां गुहराया।।
घोड़े नृप नाहीं यमराई। ऐसे भक्त चूक हैं भाई।।
भक्ति चूक कर ऐसे ख्याला। अवधि पूर यम करे विहाला।।[73]

करुणामय जी ने वहाँ जाकर यमदूतों से कहा कि चन्द्र विजय को छोड़ दो। तत्क्षण उन्होंने चन्द्र विजय का हाथ पकड़कर सतनाम का परचा दे, सतलोक गमन किया। यह देखकर रानी राजा के पास आती है और राजा का चरण स्पर्श कर कहती है कि तुम पहचान लो। मैं तुम्हारी वही रानी हूँ।

चन्द्रविजय का करगहि लीन्हा। तत्क्षण लोक पयाना दीन्हा।।
रानी देखि नृपति ढिग आई। राजा केर गह्‌यो तब पाई।।
इन्द्रमती के सुनहु भुवारा। मोहि चीन्हों मैं नारि तुम्हारा।।[74]

तब राजा इन्द्र विजय बोले हे हंस ! तुम्हारा अंग–अंग सोलह सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशमान है। मैं तुम्हें रानी कैसे कह सकता हूँ।

राय कहे सुनु हंस सुजाना। वरण तोर षोडश शशिमाना।।
अंग अंग तोरे चमकारी। कैसे कहों तोहि मैं नारी।।

पुनः राजा कहता है कि तुमने बहुत ही भक्ति की है। धन्य है तुम्हारा गुरु जिसकी तुमने भक्ति की। तुम्हारी ही भक्ति के कारण मैंने निजघर पाया है। तुम जैसी नारी धन्य है।

धन्यगुरु अस भक्ति दृढ़ाई। तोरि भक्ति हम निज घर आई।।[75]

सन्त सुदर्शन वृत्तान्त

भक्त सुपच सुदर्शन की कथा प्रथम अध्याय में दी जा चुकी है। सतनाम के प्रभाववश संत सुदर्शन की जीवन अवधि पूर्ण होने पर करुणामय जी उन्हें सतलोक ले गये तथा उन्होंने षोडशभानुकान्ति रूप में लय किया।

जबै सुदर्शन ठेका पूरा। ले सतलोक पठायो सूरा।।
मिले रूप शोभा अधिकारा। हंसन संग कूतूहल सारा।।
षोडश भानु रूप तब पावा। पुरुष दर्श सो हंस जुड़ावा।।[76]

(घ) कलियुग में निज चेतना

शिष्य धर्मदास ने कबीर साहब से यह जिज्ञासा की कि द्वापर युग में इन्द्रमती और उसके पश्चात् भक्त सुपच सुदर्शन को कर्मानुसार निज लोक में पहुँचाकर वे कहाँ गये।

हे साहिब इक बिनती मोरा। खसम कबीर कहु बंदी छोरा।
भक्त सुदरशन लोक पठायी। पीछे साहिब कहां सिधायी।।
सो सतगुरु कहो मुहि संदेशा। सुधा वचन सुनि मिटै अँदेशा।।[77]

संत कबीर साहब "द्वापर गत कलियुग परवेशा" कहकर उत्तर देते हुए कहते हैं कि द्वापर युग बीत जाने पर हम पुनः कलियुग में परम पुरुष की आज्ञानुसार जीवों को उपदेश देने के लिए चल दिये। धर्मराय अर्थात् काल निरंजन मुझे देखते ही मुर्झा गया और कहने लगा कि तीनों युगों में तुमने अपने प्रवचनों द्वारा जीव को सन्मार्ग पर लाते हुए मेरा काल–संसार उजाड़ दिया है। जो जीव तुम्हारे कृपापात्र नहीं है उन्हें तो में क्षण में खाकर लील जाता हूँ किन्तु तुम पर मेरा प्रभाव नहीं हो पाता इसीलिये तुम्हारे प्रभाव से हंस जीव निज धाम में पहुँच जाते हैं।

पुनः काल निरंजन कहता है कि कलियुग में तुम संसार में भले ही शब्द चेतना के प्रवचन के निमित्त जाओ किन्तु कोई तुम्हारे प्रवचन सुनेगा ही नही।

अब तुम फेर जाहु सगमाहीं। शब्द तुम्हार सुनै कोउ नाहीं।।[78]

मुझ धर्मराय ने कर्म–भर्म, भ्रम–भूत का ऐसा जाल फैलाया है कि ये सब जीव को धोखा दे देकर नचाते रहेंगे। मुनष्य सभी प्रकार का माँस–भक्षण करेंगे। चण्डी, जोगी तथा भूत–प्रेतादि की पूजा से जग भ्रमित होता रहेगा और अन्त समय तक जीवन के लक्ष्य को नहीं समझ पायेगा। कलियुग में तुम्हारी भक्ति कठिन है। मैं कहता हूँ कि कोई जीव इस युग में तुम्हारी भक्ति नहीं करेगा।

तब कबीर साहब बोले–

धर्मरायते बड़ छल कीन्हा। छल तुम्हार सकलो हम चीन्हा।।
पुरुष वचन दूसर नहिं होई। ताते तुम जीवन कहँ खोई।।
पुरुष मोहि जो आज्ञा देही। तो सब होय नाम सनेही।।
ताते सहजहिं जीव चेताऊँ। अंकुरी जीव सकल मुकताऊँ।।

अर्थात हे धर्मराय तुमने बहुत बड़ा छल किया है और उसे मैं जानता हूँ। परम पुरुष का वचन बदल नहीं सकता इसीलिये तुम उसका लाभ उठाकर जीवों को दुःख दे रहे हो। पुरुष ने मुझे जो आज्ञा दी है, उसके पालन से सभी जीव सद्गुरु नाम से प्रेम करेंगे। इससे मैं सभी जीवों को सहज–भाव से चैतन्य कर सकूँगा और जिन जीवों में सतनाम का अंकुर प्रस्फुटित हो गया है उनको शीघ्र ही जीवन मुक्त कर दूँगा। जिनके चित्त में चेतना के अंकुर का प्रस्फुटन हो गया है अर्थात जो जीव सांसारिक मोह माया से विरक्त हो गया है वह मुझ कबीर के 'शब्द' पर ध्यान करेगा। इस प्रकार के सभी जीवों को मैं जीवन–मुक्त कर दूँगा।

प्रकट कला जो धरि जगजाऊँ। तो सब जीवन को मुकताऊँ।।
जो अस करौं वचन तब डौले। वचन अखंड अड़ोल अमोलै।।
जो जियरा अंकूरी शुभ होई। शब्द हमार मानि है सोई।।
अंकुरी जीव सकल मुकताओं। फन्दा काटि लोक लै जाओं।।
काटि भरम जो दैहों ताही। भरम तुम्हार मानि हैं नाहीं।।[79]

तब धर्मराज कहता है कि जो जीव तुम्हारे अर्थात कबीर या परम शक्ति का नाम–स्मरण करेगा उसके पास काल नहीं जायेगा अर्थात उस पर काल कोई प्रभाव नहीं होगा। यदि मेरा दूत उस भक्त तक जायेगा तो मूर्छित होकर मुझ काल के ही पास तक लौट आयेगा।

जो जिव रहे तुम्हें लौ आई। ताके निकट काल नहिं जाई।।
दूत हमारा ताहि नहिं पावै। मूर्छित दूत मोहि पहँ आवै।।[80]

पुनः कबीर साहब धर्मराय से कहते है कि सत्य शब्द ही मोक्षदायक है। परम चेतन शक्ति के गुप्त और प्रकट दो नाम हैं। प्रकट सतनाम का उच्चारण हंस जीव करते हैं। जो हंस जीव इस नाम का स्मरण करेगा वह भवसागर से पार हो जायेगा ओर तुम्हारे कालदूत का प्रभाव उस पर नहीं होगा।

पुनः काल **"वीरा अंक गुप्त गन आऊ। ध्यान अंग सब मोहि बताऊ"** कहकर कबीर साहब ने गुप्त स्वरूप (चेतना) तथा ध्यान अंग आदि का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। तब कबीर साहब कहते है कि प्रकट रूप में तो तुम सुदास अर्थात् एक श्रेष्ठ दास हो किन्तु गुप्त रूप से छल करते हो। पुरुष की आज्ञानुसार मैं तुम्हें गुप्त (चेतना का) भेद नहीं दे सकता किन्तु कलियुग में मेरा नाम कबीर है। मेरे नाम से ही काल किसी के निकट नहीं आ सकता।

गुप्त भेद नहिं देहौं तोहीं। पुरुष अवाज कही नहिं मोहीं।।
नाम कबीर मोर कलि माहीं। कबीर कहत यम निकट न जाहीं।।[81]

तब पुनः काल बोला – मैं एक नया खेल रच रहा हूँ कि तुम्हारे नाम से ही एक पंथ चला देता हूँ और इस तरह से जीव भ्रमित होकर मेरी ओर आयेंगे।

कहै धर्म तुम मोहिं दुरै हो। खेल एक पुन हमहु खेलै हो।।
ऐसी छल बुधि करब बनाई। हंस अनेक लेव संग लाई।।
तुम्हार नाम ले पंथ चलायव। यहि विधि जीवन धोख दिखायव।।[82]

तब कबीर साहब कहते हैं कि धर्मराज तुम पुरुष द्रोही हो किन्तु जो जीव शब्द–स्नेही या नाम–स्नेही है उस पर तुम्हारे छल का कोई प्रभाव नहीं होगा। जौहरी हंस (विवेकी जीव) ज्ञान–ग्रन्थ और मेरी वाणी सबकी ही परख कर लेगा।

जो जिव होई है शब्द सनेही। छल तुम्हार नहिं लागै तेही।।
जौहरी हंस लेहिं पहिचानी। परखि हैं ज्ञान ग्रन्थ मम बानी।।

यह सनुकर काल मौन हो गया और अपने धाम में चला गया।

कलियुग में कबीर साहब द्वारा जगन्नाथ पुरी की स्थापना तथा रायबंकेजी, सहतेजी, चतुर्भुज तथा धर्मदास इन चार गुरुओं की मान्यता कराई गई। ये सभी वृत्तान्त इन उपशीर्षकों में वर्णित हैं।

जगन्नाथ पुरी की स्थापना

सन्त कबीर साहब का जगन्नाथपुरी से विशेष सम्बन्ध रहा है। उड़ीसा के राजा इन्द्रद्युम्न या इन्द्रदमन के समय इस मन्दिर का निर्माण हुआ।

राजा इन्द्रदमन तेहि काला। देश उड़ेसे को महिपाला।[83]

जगन्नाथ या पुरुषोत्तमतीर्थ भारत के प्रमुख चार धामों में एक धाम या तीर्थ स्थल है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जब अपना देह–परित्याग किया तो अपने भक्त राजा इन्द्रद्युम्न या इन्द्रदमन को स्वप्न दिया कि तुम समुद्र के अन्दर मेरा मन्दिर बनाओ।

राजा को जब यह स्वप्न हुआ तो उसने तुरन्त मन्दिर–निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

कृष्ण–देह छांडी पुनि जबही। इन्द्रदमन सपना भा तबही।।
स्वप्ने में हरि अस ताहि बताई। मेरो मंदिर देहु उठाई।।
मोकहँ स्थापन कर राजा। तो पह मैं आयउ यहि काजा।।
राजा यहि विधि सपना पाई। ततक्षण मंडप काम लगाई।।[84]

राजा ने मण्डप–निर्माण का कार्य पूर्ण करा दिया तभी समुद्र की लहरों ने तेजी से आकर उसे गिरा दिया। राजा इन्द्रदमन ने पुनः मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ करा दिया और मन्दिर बन गया। पुनः समुद्र की भयावह तरंगों ने बड़ी तेजी से आकर उस मन्दिर को गिरा दिया। इस प्रकार छः बार मन्दिर बनवाया। छः बार समुद्र की तीव्र एवं भयावह तरंगों ने उस मन्दिर को गिरा दिया।

मंडप उठा पूर्ण भा कामा। उदधि आय बोरा तेह ठामा।।
पुनि जब मन्दिर लाग उठावा। क्रोधवंत सागर तब धावा।।
क्षण में धाय सकल सो बोरे। जगन्नाथ को मन्दिर तोरे।।
मंडप सो षट्बार बनायी। उदधि दौर तिहिं लेत डुबायी।।[85]

कबीर साहब ने मन्दिर की यह दुर्दशा देखी अतः वे समुद्र के किनारे आसन लगाकर बैठ गये। उस समय उनको किसी ने देखा नहीं। इसके पश्चात् उन्होंने समुद्र तट पर आकर "चौरा" बना लिया। यहाँ चौरा पद का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

ब्रजमण्डल में 'चौरा' शब्द खुले स्थान के लिये व्यवहृत होता है जैसे चौरे में बैठो, चौरे में कहो आदि। चौरे में कहो से अभिप्राय है चुपचाप नहीं, सब के सामने कहो।

चौरा का एक अर्थ खुले स्थान में झोपड़ी आदि बनाना भी है। कबीर साहब ने समुद्र के किनारे चौरा बना लिया अर्थात् खुले में कोई झोंपड़ी जैसा निवास–स्थल बना लिया। इस प्रकार यहाँ चौरा का अर्थ खुले में बैठने के लिये झोंपड़ी जैसा स्थल है। **कबीर चौरा मठ** (मन्दिर) बनारस के नामकरण में भी चौरा पद का प्रयोग है।

आसन उदधि तीर हम कीन्हा। काहू जीव न मोही चीन्हा।।
पीछे उदधि तीर हम आई। चौरा तहँ बनायउ जाई।।[86]

कबीर साहब ने इन्द्रदमन को स्वप्न में पुनः मन्दिर–निर्माण कराने को कहा और आश्वासन देते हुए कहा **"मंडप शंक न राखो राजा। इहवाँ हम आये यहि**

काजा।।" अर्थात हे राजा तुम निःशंक होकर मन्दिर का निर्माण करवाओ। वे उसी उद्देश्य से यहाँ आये हैं। राजा ने पुनः मन्दिर–निर्माण का कार्य प्रारम्भ करा दिया। पुनः समुद्र की गर्वीली लहरें उठने लगीं और पुरुषोत्तम अर्थात् जगन्नाथ पुरी के मन्दिर को गिराने का प्रयास करने लगीं। एक लहर बहुत ऊँची आकाश की ओर उठी। समुद्र ने चौरा को देखा। जब समुद्र ने कबीर साहब का दर्शन किया तो अत्यन्त भयभीत होने लगा।

उमँगेउ लहर अकाशे जायी। उदधि आय चौरा नियरायी।।
दरश हमार उदधि जब पाई। अतिभय मान रहयो ठहराई।।[87]

समुद्र (विप्र का रूप धारण करके) कबीर साहब के चरणों में झुक गया और क्षमा–याचना करने लगा और कहने लगा कि मैंने आपके रहस्य को नहीं पहचाना । आपने मन्दिर तो बनने दिया किन्तु यह भी सत्य है कि अत्याचारी को उसकी सजा अवश्य मिलती है। पूर्व में श्रीराम जी ने सीता–प्राप्ति हेतु सेतु–बंधन के समय मेरे बहुत से जीव–जन्तुओं को मारा था। आप परमात्मा का स्वरूप हो और मैंने आपको पहचान लिया है। इस मन्दिर को तोड़ने के लिये मैंने भरसक प्रयत्न किया किन्तु आपके कारण यह सम्भव न हो सका। आप तो अलख रूप हो, स्वयं परमात्मा हो अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इसका बदला लेने दीजिये।

कीन्हेउ गवन लंक रघुवीरा। उदधि बाँध उतरे रणधीरा।।
जो कोई करै जोरावरि आयी। अलख निरंजन बोइल दिखाई।।
मो पर दया करहु तुम स्वामी। लेउ ओइल सुनु अन्तरयामी।।[88]

तब कबीर साहब ने फरमाया कि – हे पंडित ! मैंने तुम्हारी पूरी बात सुन ली है और तुम्हें बदला अवश्य दिलवाऊँगा अतः हे पंडित जी। हे समुद्र ! आप जगन्नाथ के मन्दिर को छोड़ दो और द्वारिका पुरी में जाकर वहाँ के मन्दिर को नष्ट कर दो।

ओइल तुम्हार उदधि हम चीन्हा। बोरहु नगर द्वारका दीन्हा।।[89]

यह सुनकर समुद्र शान्त हो गया। समुद्र रूप पंडित ने कबीर साहब के चरणों में नमन किया और अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसी समय पंडित समुद्र रूप में लीन हो गया और तत्क्षण वहाँ एक भयानक लहर उठी उसने जाकर द्वारकापुरी को नष्ट कर दिया।

यह सुनि उदधि धरे तब पांई। चरण टेकिके चले हरषाई।।
उदधि उमंग लहर तब धायी। बोर्‌यो नगर द्वारका जाई।।[90]

मन्दिर–निर्माण पूर्ण हो जाने पर उसमें भगवान् की मूर्ति को स्थापित कर दिया गया। एक रात हरि (जगन्नाथ जी) ने पण्डों (पण्डितों) से स्वप्न में कहा कि कबीर दास ने मुझे यहाँ स्थापित कर दिया है – "उठो आकर देखो, जगन्नाथ का मन्दिर तैयार हो गया है। विप्र स्वप्न में यह भी देखता है कि मन्दिर तैयार हो गया है तथा एक लहर आती है और मन्दिर के ऊपर से निकल जाती है। कबीर साहब जो समुद्र के किनारे एक 'चौरा' में विराजमान हैं, उनका दर्शन करके लौट जाती है। मन्दिर का कुछ नहीं बिगड़ता, वह तदवत् रहता है।

मण्डप काम पूर तब भयऊ। हरि को थापन तहँवा कियऊ।।
तब हरि पण्डन स्वपन जनावा। दास कबीर मोहि पहँ आवा।।
आसन सागर तीर बनायी। उदधि उमंग नीर तहँ आयी।।
दरश कबीर उदधि हटजाई। यह विधि मण्डप मोर बचाई।।[91]

सभी पण्डित मिलकर समुद्र के पास आते हैं और स्नान के पश्चात् मन्दिर में प्रवेश करते हैं। सामने उन्हें कबीर साहब (म्लेच्छ) दिखाई देते हैं जिसे वे अशुभ मानते हैं। कबीर साहब ने अपना एक चरित्र (रूप) रचा और खेल दिखाया। पंडितों ने देखा कि जहाँ भगवान् की मूर्ति थी, वहाँ अब कबीर साहब की मूर्ति है। सभी विप्र असमंजस में पड़ जाते हैं। उनके हाथों में अक्षत–पुष्प माला सब कुछ थी किन्तु भगवान् की मूति दिखाई नहीं दे रही थी जिससे वे पूजा कर सकते। अन्त में वे कबीर साहब के चरणों में माथा टेकने लगे।

मंडप पूजन जब पण्डा गयऊ। तहँवा एक चरित अस भयऊ।।
जहँ लग मूरति मण्डप माहीं। भये कबीर रूप धर ताहीं।।
हरमूरति कहँ पण्डा देखा। भये कबीर रूप धर भेखा।।
अक्षत पुहुप ले विप्र भुलाई। नहिं ठाकुर कहँ पूजहुँ भाई।।
देखि चरित्र विप्र सिर नाया। हे स्वामी तुम मर्म न पाया।।[92]

कबीर साहब उन पंडितों से कहने लगे कि परमात्मा एक है, सर्वव्यापक है तथा सर्वशक्तिमान है अतः तुम असमंजस में न पड़कर पूजा करो। जो जीव ऊँच–नीच, ग़रीब–अमीर तथा छूआ–छूत में विश्वास करता है वह अगले जन्म में अंगहीन हो जाता है तथा अस्पृश्यता के विश्वासी का सिर उलट जाता है अर्थात उसे मतिभ्रम हो जाता है और वह पागल हो जाता है।

वचन एक मैं कहों तोसों, विप्र सुनु तु कान दे।।
पूज ठाकुर दीन्ह आयसु, भाव दुविधा छोड़ दे।।
भ्रम भोजन करे जो जिव, अंगहीन हो ताहि को।।
करे भोजन छूत राखे, सीस उलटे ताहि को।।[93]

परमशक्ति की आज्ञा से कबीर साहब समुद्र तट पर 'चौरा' बनाकर जगन्नाथ पुरी के मन्दिर–निर्माणार्थ वहाँ विराजे थे। प्रारम्भ से ही जगन्नाथ पुरी के मन्दिर के पट हर धर्म, हर जाति एवं हर वर्ग के अनुयायी के लिए खुले हैं।

चौरा करि व्यवहार, भ्रम विमोचन ज्ञान दृढ़।।
तहँते कियो पसार, धर्मदास सुनु कान दे।।[94]

सिरजनहार की इस सृष्टि में सभी जड़ एवं चेतन पदार्थों का एक नियन्ता है। अगाध समुद्र के अनन्त–जीव जब श्रीराम के द्वारा सेतु–बन्धन के समय मारे गये तब उसके अधिष्ठाता समुद्र ने विप्र वेष धारण कर निरीह जीव–जन्तुओं की मृत्यु का बदला लेने तथा न्याय करने की प्रार्थना की और कबीर साहब की आज्ञानुसार द्वारिका को डुबाकर यह बदला तथा न्याय किया गया।

पुराणादि प्राचीन साहित्य में जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम तीर्थ का कथन है। ब्रह्म पुराण[95] में कहा है कि उत्कल देश में पुरुषोत्तम तीर्थ नाम से एक तीर्थ अति विख्यात् है क्योंकि इस पर विभु जगन्नाथ का अनुग्रह है। ब्रह्म पुराण के अध्याय 43 एवं 44 में राजा इन्द्रद्युम्न (इन्द्रदमन) की गाथा है जिसने मालवा में अवन्ती (उज्जयिनी) पर राज्य किया था। पुराने समय में उस समुद्र तट पर एक वट वृक्ष था जिसके पास पुरुषोत्तम या जगन्नाथ की इन्द्रनीलमयी प्रतिमा थी जो बालुकावृत हो गयी थी और लता–गुल्मों से घिरी हुई थी। राजा ने स्वप्न में वासुदेव को देखा जिन्होंने उनसे प्रातःकाल समुद्र तट जाने को तथा उसके पास खड़े वट वृक्ष को कुल्हाड़ी से काटने को कहा। राजा ने प्रातःकाल वैसा ही किया और तब दो ब्राह्मण (जो वास्तव में विष्णु एवं विश्वकर्मा थे) प्रकट हुए। विष्णु ने राजा से कहा कि उनके साथी विश्वकर्मा देव प्रतिमा बनायेंगे। कृष्ण, बलराम और सुभद्रा की तीन प्रतिमाएं बनायी गयीं और राजा को दी गई। भारत के सभी मन्दिरों में प्रायः युगल (दम्पति) मूर्तियाँ हैं। केवल यही ऐसा मन्दिर है जहाँ भाई–बहिन की मूतियाँ हैं। ये मूर्तियाँ इस बात की प्रतीक हैं कि सभी आपस में भाई–बहिन हैं, न कोई उच्च है न निम्न।

जगन्नाथ या पुरुषोत्तम तीर्थ को प्राचीन काल में **नीलाचल** कहा जाता था तथा कृष्ण पूजा यहाँ पर उत्तर भारत से लाई गयी थी। जगन्नाथ महामन्दिर की कुछ विशिष्ट परिपाटियाँ है। प्रथम जगन्नाथ–प्रांगण एवं सिंहद्वार के बाहर कोई जाति निषेध नहीं हैं, जगन्नाथ सभी के देवता हैं। द्वितीय विशेषता यह है कि जगन्नाथ के भोग के रूप में पका हुआ पुनीत चावल इतना पवित्र माना जाता है कि इसे प्रसाद रूप में ग्रहण करने में जाति–बन्धन टूट जाते हैं। भावना यह है कि पका हुआ चावल एक बार जगन्नाथ के समक्ष रखे जाने पर अपनी पुनीतता कभी नहीं त्यागता। आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की द्वितीया की रथयात्रा का उत्सव पुरी के 24 महोत्सवों में एक है।

रथयात्रा में प्रथम जगन्नाथ का, द्वितीय सुभद्रा का तथा तृतीय रथ बलराम का होता है। ये रथ यात्रियों एवं श्रमिकों द्वारा मन्दिर से लगभग दो मील दूर जगन्नाथ के ग्रामीण भवन तक खींचकर ले जाये जाते है। खींचते समय सहस्त्रों यात्री भावाकुल हो संगीत एवं जयकारों का प्रदर्शन करते है।

पी.वी. काणे ने धर्मशास्त्र के इतिहास भाग चार में कहा है कि दान–सागर (बल्लासेन कृत) ग्रन्थ में दो ब्रह्मपुराणों की चर्चा है। प्रकाशित ब्रह्मपुराण में कोणादित्य, एकाम्र अवन्ती तथा पुरुषोत्तम तीर्थ जैसे तीर्थों का वर्णन है। इस ब्रह्मपुराण के 176वें अध्याय से वासुदेव माहात्म्य का प्रारम्भ होता है जो 213वें अध्याय तक चला जाता है। यहाँ वर्णनकर्त्ता व्यास हैं न कि ब्रह्मा जो कि प्रथम अध्याय से लेकर 175वें अध्याय तक वर्णनकर्त्ता रहे हैं। 42वें तथा उसके आगे अध्यायों से बहुत से श्लोक तीर्थचिन्तामणि (वाचस्पति मिश्र कृत) उद्धृत किये गये है। वाचस्पति मिश्र 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुये थे। अतः आज के (प्रकाशित) ब्रह्मपुराण का समय तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं रखा जा सकता।

वस्तुतः जिस ब्रह्मपुराण में पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) तीर्थ का उल्लेख है; वह 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए वाचस्पति मिश्र कृत तीर्थ चिन्तामणि ग्रन्थ से पूर्व की रचना है और सन्त कबीर साहब का स्थिति काल भी इसी के आस–पास माना जाता है।

अस्तु ! प्राचीन काल में पुराणादि विषयक वृत्तान्तों के अनुसार जगन्नाथ पुरी में पहले एक वट वृक्ष के नीचे एक इन्द्रनीलमयी प्रतिमा थी जो बालुकावृत्त थी और लता–गुल्मों से घिरी हुई थी। राजा इन्द्रद्युम्न ने स्वप्न के अनुसार वहाँ मन्दिर–निर्माण का कार्य प्रारम्भ कराया किन्तु मन्दिर को छः बार समुद्र की लहरों ने नष्ट कर दिया

गया तब वहाँ कबीर साहब 'चौरा' में विराजमान हुए और मन्दिर–निर्माण का कार्य पूर्ण हुआ। इस प्रकार जगन्नाथ पुरी मन्दिर निर्माण में **चौरा** की महती भूमिका है।

उपर्युक्त वृत्तान्त से स्पष्ट है कि हर जीव एक चेतन तत्त्व के संरक्षण में पोषित हो रहा है। समुद्री जीवों का संरक्षक भी चेतन समुद्र है जो विप्र रूप धारण कर कबीर साहब; से भगवान् राम द्वारा लंका तक जाने में मारे गये जीव–जन्तुओं के लिए न्याय माँगता है और द्वारका को डुबा देता है। यह चेतना प्रभु के सभी रूपों में है। कबीर साहब के म्लेच्छ रूप को विप्र नमन करते हैं एवं क्षमा–याचना करते हैं। कबीर साहब सतलोक से चलकर जगन्नाथ मन्दिर के निर्माणार्थ आये जिसमें हर जाति, वर्ग एवं धर्म के अनुयायी वन्दना अर्चना एवं पूजा द्वारा उस एक चेतन शक्ति को नमन करते हैं।

PURI-JAGANNATH-TEMPLE

चार गुरुओं की स्थापना का वृत्तान्त

जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना के पश्चात् संत कबीर साहब ने अपने पंथ–प्रसार के निमित्त; चार गुरुओं को जम्बू द्वीप में स्वपंथ प्रचार द्वारा; जीव मुक्ति कार्य रूप उत्तरदायित्व सोंपा।

सुनहु सन्त यह ज्ञान अनूपा। गज थल देस परमोध्यो भूपा।।[96]

सर्वप्रथम उन्होंने राय बंकेजी को शब्दोपदेश किया और उन्हें जीवों को भवसागर से मुक्त कराने का भार सोंपा।

रायबंकेज नाम तेही आही। दीनेउ सार शब्द पुनि ताही।।
कीन्हयो ताहि जीवन कडिहारा। सो जीवन का करें उबारा।।[97]

शिलमिली दीपवासी एक संत सहतेजी जो सन्त कबीर साहब के परम भक्त थे, उनको वहाँ के लोगों की जीव–चेतना एवं भवबन्धन से मुक्त कराने का दायित्व सोंपा।

शिलमिली दीप तहाँ चलि आये। सहतेजी एक सन्त चिताये।
ताहू को कडिहारी दीन्हा। जब उन मोकहँ निजकर चीन्हा।।[98]

वहाँ से चलकर वे दरभंगा (बिहार प्रान्त) पहुँचे और वहाँ राय चतुरभुज को भी यही दायित्व सोंपा।

तहाँ ते चलि आये धर्मदासा। राय चतुरभुज पति जहँ बासा।।
ताकर देश आहि दरभंगा। परखिसि मोहि सतपर संगा।।
x x x x x
मायामोह न तनिको कीन्हा। अमर नाम तब ताहि दीन्हा।।
ताहूँ कहँ कडिहारी दीन्हा। चतुरभुज शब्द हेत करि लीन्हा।।

सन्त कबीर साहब कहते हैं कि जम्बू द्वीप के जीवों के उद्धार या मुक्ति के लिये इन चार गुरुओं को (जो स्वयं भी जम्बूद्वीप के है) मैंने अपना कर उन्हें यह दायित्व सौंपा है और हे धर्मदास जी इन चार गुरुओं में चौथे आप हैं।

हंस निरमल ज्ञान रहनी, गहनी नाम उजागरा।।
कुल कानि सबै बिसारि विषया, जौहरी गुण नागरा।।
चतुर्भुज बंकेज औ सहतेज, तुम चौथ सही
चारिहैं कडिहार जिव के, गिरा निश्चल हम कही।।
जम्बीप के जीव, तुम्हरी बाँह मोकहँ मिल।।
गहे वचन दृढ़ जीव, ताहि काल पावे नहीं।।[99]

भक्त सुपच सुदर्शन के माता–पिता के चार जन्मों का वृत्तान्त प्रथम अध्याय में दिया जा चुका है तदनुसार उनके माता–पिता ने प्रथम जन्म में कुलपति और महेश्वरी विप्र के रूप में जन्म लिया। द्वितीय जन्म में चन्दन साहू और ऊदा के रूप में जन्में।

तृतीय जन्म में उन्होंने नीरू–नीमा के रूप में जन्म लिया तथा चतुर्थ जन्म मथुरा में हुआ और यहीं से सद्गति प्राप्त कर वे सत्यलोक पधारे।

पुनः शिष्य धर्मदास के द्वारा अपने विषय में जिज्ञासा करने पर कबीर साहब कहते हैं –

इच्छा कर जो पूछा मोही। अब मैं गोइ न राखों तोही।
धर्मनि सुनहु पाछली बाता। तोहि समझाय कहों विख्याता।।[100]

सन्त कबीर साहब धर्मदास से कहते है कि तुम पिछले जन्म में नीरू जुलाहा थे।

धर्मदास तुम नीरू औतारा। आमिन नीम प्रगट विचारा।।
तुम तो आहू प्रिय मम अंसा। जाकारन हम कीन्हा बहु संसा।।[101]

कबीर साहब कहते हैं कि चतुर्थ जन्म (मथुरा) में; तुम्हारी उत्कृष्ट भक्ति के कारण तुम्हें मैंने निज लोक पहुँचाया।

रतना भक्ति करे चितलाई। नारि पुरुष परवाना पाई।।
ताकहँ दीन्हेउ लोक निवासा। अंकूरी पठये निज दासा।।
पुरुष चरण भेटे उर लाई। शोभा देह हंसकर पाई।।
देखत हंस पुरुष हरषाने। सुकृति अंश कही मन माने।।[102]

संसार में काल द्वारा जीवों को सताये जाने पर परम पुरुष ने सुकृत (धर्मदास) को संसार में जाकर पुरुष–संदेश – **संसार की निःसारता एवं भवसागर से मुक्ति के उपाय** सुनाने को कहा। सुकृत (धर्मदास) को देखकर काल मुस्कराने लगा कि इसको तो मैं अपने जाल में फँसा लूँगा। काल ने अपने भ्रम–जाल में फँसाकर उन्हें जल में डाल दिया।

सुकृत देखि काल हरषाई। इन कहँ तो हम लेव फँसाई।।
करि उपाव बहुत तब काला। सुकृत फंसाय जल महँ डाला।।[103]

बहुत समय बीतने पर पुरुष ने कबीर साहब को धर्मदास जी को चिताने के लिए पृथिवी लोक पर भेजा।

पुरुष अवाज़ उठी तिहिवारा। ज्ञानी वेगि जाहु संसारा।।
जीवन काज अंश पठवायी। सुकृत अंश जग प्रगटे जायी।।
दीन्ह आज्ञा तेहि को भाई। शब्द भेद वाही समझाई।।
लावहु जीवन नाम अधारा। जीवन खेइ उतारो पारा।।
सुनत आज्ञा वहि कीन पयाना। बहुरि ने आये देश अमाना।।[104]

धर्मदास (सुकृत) काल–जाल के कारण अपना उद्देश्य भूल गये थे अतः उनको चैतन्य कर; निर्वाण पंथ चलाने के लिए ही कबीर साहब अवतरित हुए। कबीर साहब पुनः कहते हैं कि आगे चलकर हमारे अंश स्वरूप बयालीस वंश धर्मदास के कुल में ही अवतार लेंगे जो इस कबीर पंथ का जीव–निर्वाण हेतु प्रचार–प्रसार करेंगे।

सुकृत भवसागर चलि गयऊ। काल जाल ते सुधि बिसरयऊ।।
तिन कहँ जाय चितावहु ज्ञानी। जे हिते पंथ चले निरवानी।।
वंस व्यालिस अंस हमारा। सुकृत गृह लैहें औतारा।।[105]

यह सनुकर धर्मदास कबीर साहब के चरणों में पड़ गये और विलाप करने लगे। वे बार–बार समझाये जाने पर उसी प्रकार धैर्यहीन होकर रोने लगे जैसे कोई बालक माता से बिछुड़कर विलाप करने लगता है और कहने लगे कि हे प्रभु ! ऐसी दया करिये कि मैं कभी भी आपसे न बिछडूँ। पुनः कबीर साहब कहते है कि तुम मेरे अंश हो। मुझमें और तुममें कोई अन्तर नहीं है। चारों गुरुओं में तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो –

पंथ सुपंथ गुरु समझावे। शिष्य अचेत न हृदय समावे।।
तुम तो अंश हमारे आहू। बहुतक जीव लोक ले जाहू।।
चार माहि तुम अधिक पियारे। किहि कारण तुम शोच विचारे।।
हम तुम सों कछु अन्तर नाही। परक शब्द देखो हिय माहीं।।[106]
तुम तौ हौ धर्मदास, जम्बू दीप कड़िहार जिव।
पावे लोक निवास, तुहि समेत सुमिरे मुझे।।[107]
इसके बाद कबीर साहब धर्मदास को नाम–दान करते हैं।
चतुर्भुज बंकेज सहतेज, और चौथे तुम अहौ।।
चार गुरु कडिहार जग के, वचन यह निश्चय गहौ।।
यही चार अंश संसार में, जीव काज प्रगटाइया।।
स्वसंवेद सो इन संग दियो, जेहि सुनि काल भगाइया।।
चरों में धर्मदास, जम्बू दीप के गुरु सहि।।
व्यालिस वंश विलास तरैं जीव तेहि शरण गहि।।[108]

इन ब्यालीस वंशों का वर्णन पंचम अध्याय में किया जायेगा।

(ड.) जम्बूद्वीप का चेतना वैशिष्ट्य

द्वीप पृथिवी का वह भाग होता है जो चारों ओर समुद्र से परिवेष्टित रहता है। द्वीप का विस्तृत रूप महाद्वीप होता है। प्राचीन भारत में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच शाक तथा पुष्कर सात द्वीपों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। वर्तमान में समस्त विश्व सात महाद्वीपों में विभाजित है – 1. एशिया महाद्वीप, 2. यूरोप, 3. अफ्रीका, 4. उत्तरी अमेरिका, 5. दक्षिणी अमेरिका, 6. आस्ट्रेलिया, 7. अंटार्कटिका। भारत जो आज एशिया महाद्वीप में है, प्राचीन काल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत आता था।

कवि श्री हर्षकृत नैषध महाकाव्य[109] में वर्णित है कि जम्बूद्वीप सुमेरु पर्वत के कनक दण्ड जैसे छत्र वाला तथा कैलास किरण समूह रूप चामरों के समूह के चिह्न वाला अन्य द्वीपों के राजाओं के समान सुशोभित होता था। जम्बूद्वीप में प्रवाहित होने वाली जम्बू नदी की उपजाऊ मिट्टी विश्व प्रसिद्ध थी।

ब्रह्माण्ड पुराण[110] तथा भागवत पुराण[111] के अनुसार जम्बू नदी मेरु मन्दिर शिखर के ढ़ाल पर स्थित चन्द्रप्रभा झील से निकली हुई नदी थी। जम्बू नदी के तट पर जामुन वृक्ष पर्याप्त मात्रा में थे अतः ऐसा प्रतीत होता था मानो यह जामुन के फलों के रस के बहने से उत्पन्न हुई है। इस जम्बू नदी का जल अमृत तुल्य मधुर था।[112]

जम्बूद्वीप के उत्तर में क्रमशः नील, श्वेत और श्रंगवान् नाम के तीन वर्ष पर्वत और रम्यक्, हिरण्यमय तथा उत्तर कुरु देश थे। दक्षिण में निषध, हेमकूट और हिमवान् नामक तीन वर्ष पर्वत थे तथा हरिवर्ष, किंपुरुष तथा भारत ये तीन वर्ष थे शिशुपालवध[113] में भारत नामक वर्ष का उल्लेख है।

जैन धर्म में जम्बूद्वीप को सिद्ध होने का क्षेत्र–कर्मभूमि कहा है। अन्य धर्मों में जीव को सदा के लिए ऊर्ध्वगमन वाला मानते हैं उसके निराकरणार्थ जैन धर्म में **'लोकाग्रस्थिताः'** यह विशेषण है। लोकाकाश के अग्रभाग पर सिद्धशिला विद्यमान है। वहाँ पर मुक्त जीव सदा विराजमान रहते हैं। सिद्ध होने का क्षेत्र कर्मभूमि होने से जम्बूद्वीप लवणोद् समुद्र, घातकी खण्ड – कालोद समुद्र और पुष्करार्द्ध द्वीप – इन ढाई द्वीपों में से ही जीव सिद्ध होते हैं। सिद्ध शिक्षा का क्षेत्र पैंतालीस लाख योजन है। मुक्त जीवों का अमूर्त आकार होने से एक ही स्थान से सिद्ध होने वाले जीव परस्पर एक क्षेत्रावगाह रूप होकर रहते हैं। सिद्ध जीव जिस आकाश प्रदेश से उनकी

मुक्ति होती है, उसी प्रदेश पंक्ति से सीधे ऊर्ध्वगमन कर लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित सिद्ध शिला पर विराजमान होते हैं।[114]

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि तुम जम्बूद्वीप के रहने वाले हो। परमात्मा के द्वीप के रहने वाले तुम यहाँ मर्त्यलोक में आकर भूल गये हो अतः हम तुम्हें यहाँ से निकालकर उस देश में ले जायेंगे जो काल की पहुँच से परे है।

जम्बूद्वीप के जीव, तुम्हरी बाँह मोकहँ मिल।
गहे वचन दृढ़ पीव, ताहि काल पावे नहीं।।[115]

पुनः कबीर साहब कहते हैं – हे धर्मदास ! तुम जम्बूद्वीप के लोगों को भवसागर से मुक्त कराने वाले हो।

तुम तो धर्मदास, जंबुदीप कड़िहार जिव।
पावे लोक निवास, तुहि समेत सुमिरे मुझे।।[116]

कबीर साहब धर्मदास को श्रेष्ठ सेवक एवं जम्बूद्वीप का गुरु (चार गुरुओं में एक) बताते हैं तथा कहते है कि उनके बयालीस वंश (जिनका वर्णन आगे किया जायेगा) संसार के जीवों के उद्धारार्थ होंगे –

चरों में धर्मदास, जम्बूद्वीप के गुरु सहि।
व्यालिसवंश विलास तरै, जीव तेहि शरण गह।।[117]

अस्तु ! जैन धर्म में जम्बूद्वीप को सिद्ध होने का क्षेत्र कर्मभूमि कहा है तथा सन्त कबीर साहब ने जम्बू द्वीप को परमात्मा का द्वीप कहा है। परमशक्ति ने जीव कल्याणार्थ, समय–समय पर अपने विविध अवतारों से इस द्वीप को पवित्र किया है। ऐसे जम्बूद्वीप को **चेतना द्वीप** कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनुराग पृ. 69
2. अनुराग पृ. 69
3. अनुराग पृ. 72
4. अनुराग पृ. 73
5. अनुराग, पृ. 69
6. अनुराग पृ. 69

7. अनुराग पृ. 69
8. अनुराग पृ. 69–70
9. अनुराग पृ. 70
10. अनुराग पृ. 70
11. अनुराग पृ. 70
12. अनुराग सागर, पृ.71
13. अनुराग सागर पृ. 71
14. अनुराग सागर, पृ. 73
15. अनुराग सागर. 73
16. अनुराग सागर. 74
17. अनुराग सागर, पृ. 73
18. **अनुराग पृ. 74**
19. अनुराग सागर, पृ. 74
20. अनुराग सागर, पृ. 74
21. अनुराग सागर, पृ. 74
22. अनुराग सागर पृ. 74, छन्द 54
23. अनुराग सागर, पृ. 75
24. अनुराग पृ. 75
25. अनुराग पृ. 75
26. अनुराग सागर, पृ. 76
27. अनुराग सागर, पृ. 76
28. अनुराग सागर, पृ. 76
29. अनुराग सागर, पृ. 76
30. अनुराग पृ. 76
31. अनुराग सागर पृ. 76
32. अनुराग पृ. 77
33. अनुराग सागर, पृ. 76
34. अनुराग सागर, पृ. 77
35. अनुराग सागर, पृ. 77

36. अनुराग सागर, पृ. 77, पाद टिप्पणी
37. अनुराग सागर, पृ. 78
38. अनुराग सागर, पृ. 78
39. अनुराग सागर, पृ. 78
40. अनुराग पृ. 79
41. अनुराग सागर, पृ. 79, 80
42. अनुराग सागर, पृ. 80
43. अनुराग सागर, पृ. 81
44. अनुराग सागर, पृ. 82
45. अनुराग सागर, पृ. 82
46. अनुराग पृ. 83
47. अनुराग सागर, पृ. 83
48. अनुराग सागर, पृ. 85
49. अनुराग सागर, पृ. 85
50. अनुराग सागर, पृ. 86
51. अनुराग सागर, पृ. 86–87
52. अनुराग पृ. 87
53. अनुराग पृ. 88
54. अनुराग पृ. 88
55. अनुराग पृ. 88
56. अनुराग पृ. 88–89
57. अनुराग पृ. 89
58. अनुराग पृ. 89
59. अनुराग सागर, पृ. 89
60. अनुराग पृ. 89
61. अनुराग पृ. 90
62. अनुराग पृ. 90
63. अनुराग सागर, पृ. 91
64. अनुराग पृ. 91

65. अनुराग सागर, पृ. 91, छन्द 63
66. अनुराग सागर, पृ. 91, सोरठा 66
67. अनुराग सागर, पृ. 92
68. अनुराग सागर, पृ. 91
69. अनुराग पृ. 92
70. अनुराग सागर, पृ. 93
71. अनुराग सागर, पृ. 93
72. अनुराग सागर, पृ. 94
73. अनुराग सागर, पृ. 94
74. अनुराग सागर, पृ. 94
75. अनुराग सागर, पृ. 94
76. अनुराग सागर, पृ. 98
77. अनुराग सागर, पृ. 98
78. अनुराग सागर, पृ. 99
79. अनुराग सागर, पृ. 99
80. अनुराग सागर, पृ. 100
81. अनुराग सागर, पृ. 101
82. अनुराग सागर, पृ. 101
83. अनुराग सागर, पृ. 101
84. अनुराग सागर, पृ. 101, 102
85. अनुराग सागर, पृ. 102
86. अनुराग सागर, पृ. 102
87. अनुराग सागर, पृ. 102
88. अनुराग सागर, पृ. 103
89. अनुराग सागर, पृ. 103
90. अनुराग सागर, पृ. 103
91. अनुराग सागर, पृ. 103
92. अनुराग सागर, पृ. 103
93. अनुराग सागर, पृ. 104, छन्द 70
94. अनुराग सागर, पृ. 104, सोरठा 74

95. ब्रह्म पुराण 42/35–37

96. अनुराग सागर, पृ. 104

97. अनुराग सागर, पृ. 104

98. अनुराग सागर, पृ. 104

99. अनुराग सागर, पृ. 105 सोरठा, 75

100. अनुराग सागर, पृ. 105

101. अनुराग सागर, पृ. 110

102. अनुराग सागर, पृ. 109

103. अनुराग सागर, पृ. 110

104. अनुराग सागर, पृ. 110

105. अनुराग सागर, पृ. 110

106. अनुराग सागर, पृ. 111

107. अनुराग सागर, पृ. 112 सो. 77

108. अनुराग सागर, पृ. 113, सोरठा दृ 78

109. नैषध महाकाव्य सर्ग 11

110. ब्रह्माण्ड पुराण 2/18/68–69

111. भागवत पुराण 5/16/19

112. नैषध महाकाव्य 11/86

113. शिशुपाल वध 14/5

114. कल्याण साधानांक जैन सम्प्रदाय के साधन लेखक श्री नरेन्द्र जैन, पृ. 652–654 के आधार पर

115. अनुराग सागर, सोरठा–75, पृ. 105

116. अनुराग सागर, सोरठा–77, पृ.112

117. अनुराग सागर, सोरठा–78, पृ.113